सन्मार्ग चन्दे की दर

वर्ष भर का	रु०	२५।००
छमाही	रु०	१३।००
तिमाही	रु०	७।००
एक महीने का	रु०	२।५०

केवल रविवासरीय संस्करण

छमाही	रु०	२।७५
वर्ष भर का	रु०	५।००
(मम परिशिष्ट) वार्षिक	रु०	४।००

टेलीफोन नं०—३५२०

सन्मा...

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै

प्रधान सम्पादक—

अङ्क ३१८] [साधारण संस्करण] वाराणसी मार्गशीर्ष शुक्ल ९ वि० सम्वत् २०१८ शनिवार तारीख

...र्तगालके आरोप ...

एवं
...ल
...म उठे

...विष्य

...दिसम्बर
...ोंकी गतिमें
...—व्यापारिक
...के कारणों
...प्रभावी उपाय
...म होंगे स्वास्थ्य
...की मतभेदमें

लाहौरी टोलाके श्री लाल चन्द्र शर्माके घरसे नगद, जेवर एवं कपड़ा-बर्तनोंकी चोरी हो गयी।

• • •

चेतगंज थानेकी पुलिसने कल घूरचन्दकी मुहल्लेके श्री उमाशंकर श्री वास्तवके घरसे सामान चुराकर भागते समय उसी मुहल्लेके हीरा-लालको गिरफ्तार किया।

• • •

कल सायंकाल गोदौलिया चौराहेपर श्री वी० पी० माथुर इंसपेक्टरने ५ दूध बेचनेवालों ५ व्यक्तियोंको रीजनल ५ एक्टकी धारा में गिरफ्तार किया।

भारतके लिए अमरीकी छात्र सलाहकार

गंभीर प्रतिक्रिया हो सकती है यदि भारत ने बल का प्रयोग किया

गोआ के मामले पर डंकन का भाषण

लन्दन, १५ दिसम्बर। ब्रिटिश मन्त्रिमंडलके परराष्ट्र विभागीय सचिव डडलने कल कहा कि यदि भारतने पुर्तगालके साथ बल प्रयोग किया तो उसका परिणाम बहुत गम्भीर 'हो सकता है। यह पूछे जानेपर कि क्या इस मामलेमें ब्रिटेन पुर्तगाल के साथ हुई उस संधिका पालन करेगा जो उसके और पुर्तगालके बीच सन् १३५३ में हुई थी। इसके उत्तरमें डंकनने कहा कि उस सन्धिका पालन तब

वेदोक्त भक्ति ज्ञान

तथा

इनका फल

लेखक—
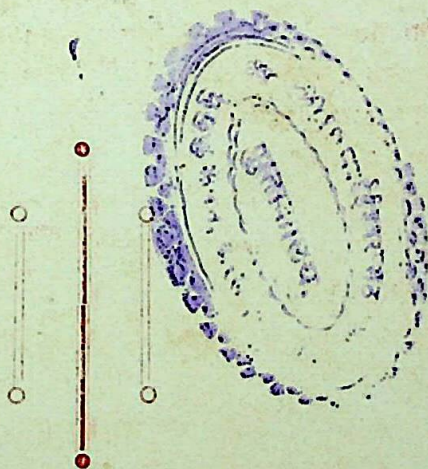
श्री दण्डी संन्यासी रामतीर्थ जी

सम्मति

दंडी संन्यासी श्रीरामतीर्थ जी का हिन्दी तथा संस्कृत में लिखा पुस्तिकाकार यह लेख मैं ध्यानपूर्वक देख गया हूं। आपने इस बात पर विशेष बल दिया है कि जो लोग 'तत्त्वमसि' महावाक्य में 'तत्' पद का वाच्यार्थ ईश्वर और लक्ष्यार्थ ब्रह्म तथा 'त्वं' पद का वाच्यार्थ जीव और लक्ष्यार्थ कूटस्थ आत्मा एवं शुद्ध सत्त्वगुण मायासहित सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ईश्वर सर्वव्यापक और समग्र सुषुप्ति तथा महाप्रलय ब्रह्मका कारण शरीर मानते हैं। उनके मतमें सच्चिदानन्द की मायातीत शुद्ध निर्गुण ब्रह्म-अवस्था सिद्ध नहीं होती; किन्तु विशिष्टाद्वैत ब्रह्मरूप ही सिद्ध होता है। इसलिए मनरूप इच्छारहित शुद्ध सत्=सच्चिदानन्द को 'तत्' पदसे और मन-सहित 'सत्' को 'त्वं' पदसे ग्रहण करना चाहिए; अर्थात् तत् ब्रह्म है और त्वं जीव है। दृष्टांतनें 'तत्' सूर्य, मृत्तिका, सुवर्ण या लोह स्थानीय है और 'त्वं' प्रतिबिम्ब, घट, आभूषण, या पिंड स्थानीय है। तत्में त्वंका आरोप ऐसे है जैसे राजकुमारमें भीलपनका या कुन्तीपुत्र कर्णमें राधेयका। शुद्ध सात्त्विक मनरूप इच्छासहित आदित्य-स्थानी सच्चिदानन्द अन्तर्यामी ईश्वर है। वह स्वरूपसे व्यापक नहीं, किन्तु उसका ज्ञान व्यापक है या ज्ञानद्वारा स्वयं। सुषुप्ति तथा महाप्रलय की आदिम-अंतिम अवस्थाएं सच्चिदानन्द आत्माका कारण शरीर हैं और इन दोनों की मध्य अवस्था (गाढ़ अवस्था) सच्चिदानन्द की शुद्ध अवस्था है।

लेखक महोदय की यह व्यवस्था मुझे मान्य है। क्योंकि ऐसा मानने से सुषुप्ति और प्रलय को सच्चिदानन्द का कारण शरीर माननेवाली तथा ब्रह्म-रूप माननेवाली दोनों प्रकार की श्रुतियां चरितार्थ हो जाती हैं।

जिस किसी विद्वान् को इस बात पर विप्रतिपत्ति हो वह अपने अभिप्राय को लिखित रूपमें सहर्ष प्रकट कर सकता है।

—निगमानन्द

ता० ८. ९. १९५७।
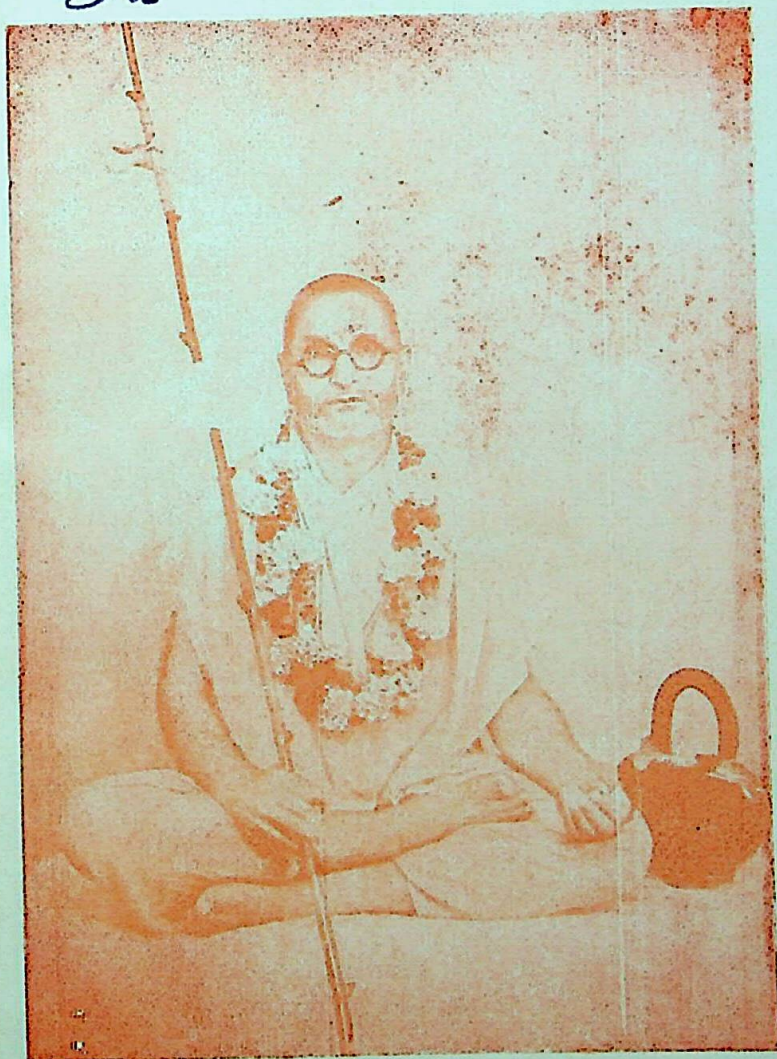
श्री: १०८ दण्डी स्वामी रामतीर्थजी

॥ ॐ ॥

वेदोक्त भक्ति ज्ञान तथा इनका फल

लेखक :

श्री दण्डी संन्यासी रामतीर्थ जी

निवास स्थान :

गर्मी में : रामप्यारी का रामभवन, मुहल्ला–भूपतवाला, हरिद्वार ।

सर्दी में : मन्दिर सोनियां, पुराना बाजार, लुधियाना ।

प्रकाशक :

मुरारिलाल सोनी, मुहल्ला–सोनियां, लुधियाना ।

पुस्तक प्राप्तिस्थान :

अमोलकराम ज्योतिषी

मन्दिर सोनियां, लुधियाना ।

दूसरी बार भी १००० ।

ज्येष्ठ, वि सम्वत् २०१४ ।

शाकः सम्वत् १८७६ ।

वेदोक्त भक्ति ज्ञान तथा इनका फल

ओं नमो भगवते आदित्य-मंडलस्थाय ।
श्री गुरुभ्यो देवेभ्यो नमो नमः ।।

प्रिय पाठको ! स्मरण रहे कि असांप्रदायिक होने से मंत्रात्मक वेद तथा मन्त्रब्राह्मणात्मक ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, मांडूक्य, तैतरीय, ऐतरेय, छांदोग्य एवं बृहदारण्यक ये दस उपनिषद् ही सब के लिए सम्मानित हुए हैं। इनके अनुसारी होनेसे ब्रह्मसूत्र भी सर्वमान्य हुआ है। इसलिए इनके आधार पर ही भक्ति-ज्ञान और इनके फल का निरूपण किया जावेगा। उपनिषदों में कहीं पर ओं में ब्रह्म-बुद्धि करके ओंकार के द्वारा ब्रह्म की उपासना कही गई है और कहीं पर ओं को वाचक तथा ब्रह्म को वाच्य मान कर ब्रह्म की भक्ति करने का विधान है। परन्तु यहां पर तो माया-युक्त ब्रह्म की अभेद रूप उच्च उपासना लिखने का प्रयास किया जा रहा है।

मायाविशिष्ट ब्रह्म की अभेद भक्ति का अधिकारी

जिस मनुष्यने पूर्व जन्म में अथवा इस जन्म में वैदिक अग्नि-होत्र आदि कर्म किया है या गायत्री मंत्र के अनेकों पुरश्चरण किये हैं या फिर अन्य जीवों की किसी प्रकार से भलाई निष्काम बुद्धि से की है—इसीसे जिसको इस लोक तथा स्वर्गलोक के भोगों से वैराग्य हो गया है और वह ब्रह्मलोक के सुखों की कामना वाला है। वह व्यक्ति मायायुक्त ब्रह्म की अभेद उपासना करने का अधिकारी है।

उपास्य ब्रह्म का स्वरूप

तैतरीय उप० में ब्रह्मानन्द वल्ली के आठवें अनुवाक में श्रुति—"स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः" भृगुवल्ली के दसवें अनुवाक में श्रुति—"स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः" वह जो इस पुरुष में है और जो उस आदित्य नाम सूर्य में है वह (सच्चिदानन्द), दोनों में एक है। यह श्रुतियों का अर्थ है। छान्दोग्य उप० के अ० १ खंड ६ में श्रुति "य एषोऽन्तरादित्ये पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः। तस्य पुण्डरीकमेवमक्षिणी" जो यह आदित्य के अन्दर में सुवर्णमय पुरुष देखा जाता है, सुवर्ण जैसी दाढ़ी मूंछ वाला और सुवर्ण जैसे केशों वाला है तथा यह नख से लेकर सब सुवर्ण जैसा है और उस के नेत्र कमल जैसे हैं। छान्दोग्य अ० २ खंड १ में श्रुति—"असौ वा आदित्यो देवमधु" यह सूर्य देवताओं का मधु है, अर्थात् वे इस मधु-शहद या अमृत के द्वारा जीवन धारण करते हैं। वृहदारण्यक उ० अ० २ ब्राह्मण ३ "द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे" (निर्गुण सच्चिदानन्द) ब्रह्म के दो रूप हैं, इत्यादि श्रुति के अनुसार, उनमें, एक उपास्य-रूप सूर्यस्थानी है, जो कि सभी देवताओं में बडा होनेसे अधिदैव कहाजाता है। और दूसरा उपासक-रूप मनुष्यस्थानी है जो कि साधारण जीवों में कर्म योनि होनेसे सभी से उत्तम अध्यात्म कहा गया है। उक्त श्रुति का यह संक्षिप्त भावार्थ के सहित अर्थ है। इसप्रकार उपनिषदों में सूर्यस्थानी ब्रह्म या ईश्वर उपास्य

माना गया है। कठ उप० अ० १ वल्ली ३ मंत्र १५—१६—"एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म" इत्यादि मन्त्रों के अनुसार तथा प्रश्न उप० प्रश्न ५ "एतद्वै सत्यकाम" इत्यादि श्रुति से इसीका नाम अपर-ब्रह्म है। "हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे" इत्यादि ऋग्वेद के मन्त्र से इसीका नाम हिरण्यगर्भ है। मांडूक्य उप० श्रुति ६ "एष सर्वेश्वर" इत्यादि श्रुति से इसीका नाम सर्वेश्वर सर्वज्ञ और अन्तर्यामी है। यही शुद्धसत्त्वगुण-प्रधान मायावृत्ति वाला ईश्वर है। इसीसे यह सर्व का ज्ञाता होनेसे सर्वज्ञ है। क्योंकि यह ज्ञानरूप से सर्व व्यापक है या इसका ज्ञान व्यापक है। इसीसे यह सबका ईश्वर या प्रेरक होनेसे सर्वेश्वर है। शुभाशुभ कर्म का फलप्रदाता तथा प्रार्थना करने पर अंदर में प्रेरणा करने से अन्तर्यामी है। यही उपास्य ब्रह्म या ईश्वर है। स्मृतियों के प्रमाणों से गायत्री-मन्त्र द्वारा, प्रातः सायं की संध्या द्वारा तो सूर्यस्थानी उपास्य ब्रह्म निश्चित ही है। ऐसे तो सच्चिदानन्द,अहंवृत्तिसे रहित यानी निर्गुण-रूपसे ब्रह्म या व्यापक है, वह अहंवृत्तिके सहित ब्रह्म नहीं किन्तु परिच्छिन्न है, तो भी ब्रह्म सूत्र अ० ४, पाद ३, सूत्र ९ "सामीप्यात्तु तद्व्यपदेशः" इसके अनुसार, निर्गुण सच्चिदानन्द ब्रह्म के समीप होनेसे यानी उसीका विशेषरूप होनेसे और शुद्ध सत्त्वगुणप्रधान होनेसे हिरण्यगर्भको भी ब्रह्म कहा गया है। अतः यही उपास्य ब्रह्म है।

उपासना या भक्ति

छांदोग्य उप० अ० ४ खंड ११ श्रुति—"य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोहमस्मि स एवाहमस्मि" जो यह आदित्य या सूर्य में

पुरुष देखा जाता है वही मैं हूं 'वही मैं हूं' इस श्रुति के अनुसार, आदित्यान्तर्गत सुवर्णमय पुरुष परमात्मा की सोहमस्मि तथा ईशावास्योपनिषद् मन्त्र १६ **"पूषन्नेकर्षे"** इसका अन्तिम पाठ **"योऽसावसौ पुरुषः सोहमस्मि"** जो उस आदित्य में पुरुष है वह मैं हूं, इस मन्त्र के अनुसार, **"सोहमस्मि"** वही मैं हूं ऐसी अभेद भक्ति करनी चाहिये। ऐसे ही प्रश्न उप० प्रश्न ५ विशेषकर माँडूक्य उप० में ओंकी अकार उकार मकार रूप तीन मात्राओं का तथा आत्मा के विश्व तैजस प्राज्ञ नाम के अध्यात्म तीन पादों का एवं ब्रह्म के वैश्वानर हिरण्यगर्भ अन्तर्यामी नाम के अधिदैव रूप तीन पादों का एकीकरण करके ब्रह्म की अभेद रूप भक्ति करने का उपदेश है। छांदोग्य उप० अ० ८ खंड ७ **"य आत्मापहतपाप्मा"** जो परमात्मा, पापरहित, जरारहित, मृत्युहीन, शोकरहित, भूखरहित, पिपासारहित, सत्यकाम, और सत्यसंकल्प है उसे खोजना चाहिये उसे विशेष रूप से जानना चाहिये, जो मनुष्य, गुरु-उपदिष्ट मार्ग से जान कर उसकी भक्ति करता है वह सम्पूर्ण लोकों को तथा सर्वकाम ऐश्वर्य विभूति या अणिमा महिमा आदि भोगों को प्राप्त कर लेता है, ऐसा प्रजापति ने कहा। इस श्रुति के अनुसार, उपासक को चाहिये कि उपासना के अंग होने से परमात्मा के पापरहित आदि धर्मों का अपने में आधान करके ब्रह्म की **"सोहमस्मि"** ऐसी अभेद बुद्धि से उपासना करे। भक्त में जिज्ञासु जैसे उच्च विवेक वैराग्य आदि साधन नहीं होते, शेष सब साधन जिज्ञासु के साधनों के समान ही होते हैं। इसलिये **"तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदा सर्वाङ्गानि सत्यमाय-**

तनम्" इस केन उप० की श्रुति से, ब्रह्म-विद्या के या उपासना के तप=बिना किसी प्रतिक्रिया के शीत और उष्ण को सहन करना, दम=इन्द्रियों को बाह्य विषयों से रोकना, कर्म=अपने वर्ण-धर्म तथा आश्रम-धर्मों को यथाशक्ति करते रहना, वेदा सर्वांगानि=यथा-शक्ति वेद और उसके अङ्गों का स्वाध्याय करना, ये सब उपासना के पाद या पैर हैं और सत्य=मनवाणी से दूसरों के हित के लिये वाक्य बोलना, यह उपासना का आयतन या रहने का स्थान है। एवं अहिंसा आदि पांच यमों का पालन करना। अहिंसा=मनवाणी शरीर से किसी प्राणी का अनिष्ट नहीं करना, सत्य=सत्य का अर्थ पीछे लिखा जा चुका है, अस्तेय=चोरी का त्याग करना। ब्रह्मचर्य= स्त्री के स्मरण आदि आठ प्रकार के मैथुनों का त्याग करना। स्त्री है तो ऋतुकालाभिगामी होना। अपरिग्रह=किसी से कुछ भी ग्रहण न करना और अपनी वस्तु को भी शरीरयात्रा निर्वाह के अतिरिक्त अधिक पास में न रखना। ये पांच यम हैं।

भक्ति का गौणफल

जिस समय भक्त, पूर्वोक्त साधनों के सहित ब्रह्म की अभेद-भक्ति करता है। तब उसका अन्त:करण रजोगुण के और तमोगुण के दब जाने पर इतना शुद्ध सत्वगुण प्रधान हो जाता है कि उसमें ब्रह्म के पापरहित आदि सत्यकाम सत्य-संकल्प पर्यन्त धर्मों का विकास हो जाता है। परन्तु वे परमात्म-संबन्धी धर्म उसमें टिकाऊ नहीं होते। क्योंकि अभी तक उसके साथ अनेक रोगों के आगार स्थूलशरीर का संबन्ध बना हुआ है। जब फिर प्रारब्ध,भोग की

समाप्ति से स्थूलशरीर का नाश हो जाता है, तब वह उपासक, छांदोग्य० अ० ८ खण्ड ६ श्रुति ५ "अथ यत्रैतदस्माच्छरीरात्" इत्यादि श्रुति तथा ब्रह्मसूत्र अ० ४ पाद २ सूत्र १८ "रश्म्यनुसारी" इसके प्रमाण से, सूर्य की किरणों को प्राप्त हो जावेगा। ब्रह्मसूत्र अ० ४ पाद २ सूत्र १९ "निशि नेति चेन्न सम्बन्धस्य यावद्देहभावित्वात्।" यदि कहो कि रात्रि में तो किरणें नही होती हैं, जब उपासक रात को प्राण त्यागेगा तो सूर्य की रश्मियों को कैसे प्राप्त होगा, ऐसी शंका करके व्यास जी उत्तर देते हैं कि जबतक शरीर है तबतक इसके साथ किरणों का सबन्ध है। अतः वह रात में भी किरणों को प्राप्त होगा। छांदोग्य० अ० ८ खण्ड ६ "या एता" इत्यादि श्रुति से, ये पिंगला आदि नाम वाली नाड़ियां सूर्य से सम्बन्ध रखती हैं, उस सूर्य से चलती हैं, इन नाड़ियों से टकराती हैं और यहां से चलती हैं उस सूर्य से मिलती हैं। छांदोग्य अ० ४ खण्ड १५ "अथ चैवास्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति यदि च नार्चिषमेवाभिसंभवन्ति" इत्यादि श्रुति से, ऐसे उपासक की मृत्यु होजाने पर कोई उसका मृतक कर्म करे या न करे वह सूर्य की रश्मियों को प्राप्त हो जावेगा, वहां से दिन शुक्ल पक्ष उत्तरायण संवत्सर आदित्य चन्द्रमा बिजली और अमानव पुरुष के द्वारा ब्रह्मलोक मे पहुंच जावेगा। ब्रह्मसूत्र अ० ४ पाद २ सूत्र २१ "योगिनः प्रति च स्मर्यंते स्मार्ते चैते।" इस सूत्र में ऐसा कहा है कि श्रुति में अहः शुक्लपक्ष आदि शब्द, काल या समय के बोधक नहीं हैं, सांख्य और योग ने योगियों के प्रति, दिन आदि काल का ग्रहण किया है,

परन्तु ये स्मार्त हैं किन्तु ये श्रुतिमूलक नहीं है। इसलिये ब्रह्म० अ० ४ पाद २ सूत्र २० "**अतश्चायनेपि दक्षिणे**" इसके अनुसार, दक्षिणायन में भी प्राण त्यागने पर वह ब्रह्मलोक में जावेगा। क्योंकि ब्रह्म० अ० ४ पाद ३ सूत्र ४ "**अतिवाहका स्तल्लिंगात्**" इसके अनुसार, अर्चि दिन शुक्ल पक्ष उत्तरायण इत्यादि नाम वाले भक्त को ब्रह्मलोक में ले जाने वाले ये सब चेतन देवता हैं, मार्गचिन्ह नहीं हैं। इसलिये श्रुति में काल या समय का कुछ भी मान नहीं है। प्रश्न उप० प्रश्न १ श्रुति १५ "**तेषामेवष विरजो ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्**" उन्हें ही वह रजोगुण से रहित ब्रह्मलोक प्राप्त होता है, जिन में तप ब्रह्मचर्य और जिन में सत्य स्थित है, अर्थात् जो सत्यभाषी हैं। १६ "**तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति**" उन्हें ही वह शुद्ध ब्रह्मलोक मिलता है, जिनमें दम्भ झूठ और छल नहीं है। मुण्डक उप० मुं० १ खण्ड २ मंत्र ११ "**तपः श्रद्धे ये ह्युपवसंत्यरण्ये**" इसके अनुसार, तप और श्रद्धापूर्वक जो बन में वास करने वाले हैं ऐसे वानप्रस्थ एवं जो रागद्वेष से रहित भिक्षा मांगकर खाने वाले संन्यासी लोग हैं वे, विक्षेप से रहित हुये सूर्यद्वार से ब्रह्मलोकमें जाते हैं, जहां अविनाशी परमात्मा का निवास है। ब्रह्म० अ० ४ पाद ३ सूत्र १५ "**अप्रतीकालंबनान्नयतीति बादरायणः**" इसमें व्यासजी कहते हैं कि ब्रह्म की प्रतीक रूप से उपासना करने वाले के बिना अन्य सभी उपासकों को अमानव पुरुष ब्रह्मलोक में ले जाता है। ब्रह्मलोक में पहुंचे हुए उपासक को व्यास जी अब मुक्त नाम से

पुकारते हैं। ब्रह्म० अ० ४ पाद ४ सूत्र **"संपद्याविर्भावः स्वेन शब्दात्"** ॥१॥ **"मुक्तः प्रतिज्ञानात्"**॥२॥ **"आत्मा प्रकरणात्"** ॥३॥ **"अविभागेन दृष्टत्वात्"** ॥४॥ इन सूत्रों के प्रमाण से, वह मुक्त पुरुष, ब्रह्म से अविभक्त या अभिन्न हो जाता है। अर्थात् जैसे लोहे का गोला अग्नि में डाला हुआ तद्रूप हो जाता है। सूत्र ५ **"ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः"** जैमिनि जी कहते हैं कि वह पापरहित आदि सत्यकाम सत्य-संकल्प पर्यन्त ब्रह्म के धर्मों से सम्पन्न होता है। अर्थात् जैसे लोहे के गोले में अग्नि के उष्ण प्रकाश धर्म आ जाते हैं। ऐसे ही मुक्त के शुद्ध सत्वगुण-प्रधान अन्तःकरण में ब्रह्मके धर्म आ जाते हैं। सूत्र ६ **"चिति तन्मात्रेण तदात्मकत्वादिति औडुलोमिः।"** औडुलोमि कहता है कि वह चैतन्यमात्ररूप से अवस्थित होता है, अर्थात् ब्रह्म-सम्बन्धी ऐश्वर्य से नहीं होता है। सूत्र ७ **"एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावादविरोधं वादरायणः।"** व्यास जी कहते हैं कि चैतन्यमात्र रूप से अवस्थित होने पर भी उस में ब्रह्म-संबन्धि अणिमा आदि ऐश्वर्य होता है, इस में किसी प्रकार की क्षति नहीं है। सूत्र ८ **"संकल्पादेव तु तच्छ्रुतेः।"** मुक्त के संकल्प-मात्र से सभी भोग उपस्थित होते हैं, अर्थात् उसे अन्य साधनों की अपेक्षा नहीं है। सूत्र ९ **"अत एव चानन्याधिपतिः।"** इसीलिये उसका कोई अन्य पति नहीं है, अर्थात् वह परतन्त्र नहीं है। सूत्र १० **"अभावं वादरिराह ह्येवम्।"** वादरि कहता है कि मुक्त, मन से ही सब भोग भोगता है उस के इन्द्रियां शरीर नहीं होते हैं। सूत्र ११ **"भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्।"** जैमिनि जी कहते हैं कि मुक्त के इन्द्रियां होती हैं और शरीर भी होता है। सूत्र १२ **"द्वादशाहवदु-**

भयविधं बादरायणोऽतः ।" व्यास जी कहते हैं कि जब मुक्त पुरुष, शरीर के सहित होना चाहता है तब वह सशरीर हो जाता है, और जब शरीर को नहीं चाहता है तब वह अशरीरी हो जाता है, क्योंकि वह सत्य-संकल्प है। सूत्र १३ "तन्वभावे संध्यवदुपपत्तेः।" जब शरीर और इन्द्रियों का अभाव होता है, तब उसे स्वप्न अवस्था के समान जैसे सूक्ष्म भोग प्राप्त होते हैं। सूत्र १४ " "भावे जाग्रद्वत्।" और इन्द्रियां तथा शरीर के होने पर जाग्रत अवस्था के समान स्थूल पितृ आदि भोग प्राप्त होते हैं। सूत्र १५ "प्रदीपवदावेशस्तथा हि दर्शयति।" जैसे एक दीपक से लगा कर जलाए गये अन्य दीपक भी प्रकाशमान होते हैं, ऐसे ही मुक्त के द्वारा रचे गये शरीर भी, मन और इन्द्रियों के सहित ही होते हैं।

व्यास जी, जीवन्मुक्त की दशा वर्णन करते हुए बीच में ही अब कैवल्यमुक्ति के लिये सूत्र रचते हैं। शांकर भाष्य—(प्रश्न) "कथं पुनर्मुक्तस्यानेकशरीरावेशादि" जबकि किस करण से किस विषय को जाने परन्तु उस से दूसरा है ही नहीं है जिस को वह जाने, इत्यादि श्रुतियां विशेष ज्ञान का निवारण करती हैं; तब फिर मुक्त के अनेक शरीर में प्रवेश आदि रूप ऐश्वर्य को किस प्रकार स्वीकार किया गया। 'व्यास जी' इस प्रश्न का उत्तर कहते हैं। सूत्र १६ "स्वाप्ययसंपत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि।" ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय रूपी विशेष ज्ञान का अभाव श्रुतियों में कहीं पर स्वाप्यय (सुषुप्ति) अवस्था को लेकर कहा है और कहीं पर सम्पत्ति (कैवल्य) को लेकर कहा गया है। शांकरभाष्य–जहाँ पर श्रुतियों में इस ब्रह्म संबंधी ऐश्वर्य को वर्णन किया है,वह अवस्था स्वर्ग आदि के समान

अन्य अवस्था है। अर्थात् वह मुक्ति नहीं है। इसी लिए श्रुतियों में परस्पर विरोध नहीं है। भामती और आनन्दगिरीय व्याख्या में है कि, कैवल्य के समीप होने से जीवन्मुक्ति या क्रम-मुक्ति को मुक्ति कहा गया है, वास्तव में यह मुक्ति नहीं है। जैसे दिन के समीप होने से प्रातःकाल की लाली को दिन कहा जाता है, वह वास्तव में दिवस नहीं है। क्योंकि वास्तव में दिवस सूर्योदय होने से ही होता है। ऐसे ही जीवनन्मुक्ति, वास्तव में मुक्ति नहीं है, किन्तु ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय आदि त्रिपुटी का अभाव रूप कैवल्य मुक्ति ही वास्तव में मुक्ति है।

व्यास जी अब प्रकरण प्राप्त जीवन्मुक्ति का फिर वर्णन करते हैं। सूत्र १७ "जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसंनिहितत्वात्।" अन्य सब प्रकार की अणिमा आदि विभूति मुक्त पुरुष को होती है किन्तु जगत की उत्पत्ति पालन और संहार के काम को वह नहीं कर सकता। सूत्र १८ "प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्नाधिकारकमण्डलस्थोक्तेः।" जगत की उत्पत्ति आदि का काम तो सूर्यमण्डल में अवस्थित परमात्मा ही करता है। सूत्र २१ "भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च।" मुक्तों को भोगमात्र में ब्रह्म की समानता होती है। अर्थात् वे बाह्यसृष्टि में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। इस प्रकार भक्त को पापरहित आदि, सत्यकाम, सत्यसंकल्प पर्यन्त ब्रह्म के ऐश्वर्य की प्राप्तिरूप भक्ति या उपासना का गौणफल कहा गया।

भक्ति का मुख्य फल

ब्रह्म० अ० ३ पाद ४ सूत्र ५१ "ऐहिकमप्यप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात्।" श्रवण मनन और निदिध्यासन, इन ज्ञान के साधनों को

करने वाले व्यक्ति को किसी प्रतिबन्ध के न होने पर इसी जन्म में संम्यक् आत्मज्ञान हो जाता है, किसी प्रकार के प्रतिबन्ध होने पर (भरत और वामदेव आदि के समान) जन्मजन्मान्तरो में संशय रहित आत्मज्ञान होता है। पंचदशी ध्यानदीप श्लोक ५१ "ब्रह्म-लोकाभिवांछायाम्" ब्रह्मलोक के भोगों की अभिलाषा को रोक कर जो मनुष्य, आत्म-विचार करता है वह आत्मा को साक्षात्कार नहीं कर सकता, अर्थात् ब्रह्म लोक की वांछारूप प्रतिबन्ध से वह ब्रह्म-ज्ञानी नहीं होता। श्लोक ५२ "वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः" ऐसा शास्त्र होने से ब्रह्म लोक में वह सृष्टि के अन्त में ब्रह्मा के साथ ही मुक्त हो जाता है। इस श्लोक में मुण्डक उप० मुं० ३ खंड २ "वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः" इत्यादि मन्त्र का भावार्थ कहा गया है। ब्रह्म० अ० ४ पाद ३ सूत्र १० "कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात्।" शांकरभाष्य—कार्यब्रह्मलोकप्रलयप्रत्युपस्थाने सति तत्रैवोत्पन्नसंम्यग्दर्शनाः सन्तस्तदध्यक्षेण हिरण्यगर्भेण सहातः परं परिशुद्धं विष्णोः परमं पदं प्रतिपद्यन्त इति।" कार्य ब्रह्म लोक की प्रलय उपस्थित होने पर वहां ही जिन्हें संशय विपर्यय से रहित आत्म-ज्ञान हो गया है वे ब्रह्मलोक के अध्यक्ष हिरण्यगर्भ के साथ (अहंरूपी विद्या-वृत्ति के स्वाश्रय सत् में समाप्त हो जाने पर) व्या-पक रूपी परमपद को प्राप्त हो जाते हैं। यह भाष्य का अर्थ है। छांदोग्य अ० ८ की अन्तिम "न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते" नहीं लौटता है २, इस श्रुति से, तथा ब्रह्म०अ०४ पाद ४"अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्।" अनावृत्ति श्रुति से अनावृत्ति श्रुति से, इस अन्तिम सूत्र के अनुसार, जो मनुष्य ब्रह्म लोक के भोगों को

भोग कर कैवल्य मुक्ति की भावना से ब्रह्मलोक में गया है, उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। तात्पर्य यह कि महाप्रलय में जीव मात्र की त्रिपुटी के अभाव से द्वैत रहित कैवल्य मुक्ति हो जाती है, किन्तु वह सापेक्ष मुक्ति है। और जो ब्रह्मलोक में अथवा इस लोक में आत्म-ज्ञान द्वारा मुक्ति है, वह निरपेक्ष कैवल्य मुक्ति है। इन दोनों में इतना अन्तर है। इस प्रकार माया-विशिष्ट सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की अभेद भक्ति का मुख्य फल आत्म-ज्ञान का प्राप्त होना है और आत्म-ज्ञान का फल कैवल्य मोक्ष है, यही अर्थ श्रुतियों और सूत्रों से निर्णीत हुआ है।

जीवात्मा का वास्तविक स्वरूप तथा ज्ञेय ब्रह्म

छांदोग्य छठे अध्याय के खंड २ में श्रुति—**"सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्"** हे सोम्य, यह कारण कार्यरूप जगत् सृष्टि से पहिले एक ही अद्वितीय सत् था। शांकरभाष्य—**"सदेव सदित्यस्तितामात्रं वस्तु सूक्ष्मं निर्विशेषं सर्वगतमेकं निरंजनं निरवयवं विज्ञानं यदवगम्यते सर्ववेदान्तेभ्यः।"** अर्थात् इच्छा शक्ति के स्वाधिष्ठान सत् में लीन हो जाने पर, शक्ति के स्वविषयात्मक या आच्छादक कल्पित रूप के निवृत्त हो जाने से उस की पृथक् या भिन्न रूप से गणना नहीं है। अतः वह सत् महाप्रलय में, सांख्य परिकल्पित प्रधान से रहित, कणाद परिगृहीत परमाणु आदि रूप से शून्य तथा वैनाशिक सम्मानित शून्य से विलक्षण, निर्विशेष, निरावरण, निरंजन, निष्प्रपंच अखंड अद्वैत शुद्ध ब्रह्म था; किन्तु विशिष्ट अद्वैतब्रह्म नहीं था। तात्पर्य यह है जिस से कि, महाप्रलय की आदि अवस्था में सत् या सच्चिदानन्द की कारण अवस्था विलीन होने लगती है

और उस की अन्तिम अवस्था में सत् की कारण अवस्था का आरम्भ हो जाता है, इस लिये वह सत्, महाप्रलय की मध्य अवस्था में, माया अविद्या से रहित होने से स्वगत आदि तीन भेदों से शून्य चतुष्पाद विशुद्ध निरपेक्ष निर्गुण ब्रह्म था। क्योंकि उस समय अहंरूपा अविद्या शक्ति सत् से भिन्न नहीं है। अतः वह द्वैत से रहित है। इसी से इसी अध्याय के आठवें खंड में शांकर भाष्य में, श्रुतियों के प्रमाण से सुषुप्ति में मरण में निर्विकल्प समाधि में और महाप्रलय में सत् को द्वैतरहित पूर्णब्रह्म मान लिया है। जो लोग, अद्वैतवादी होते हुए भी इन चार अवस्थाओं में, सत् से उस की अहंरूपा अविद्या शक्ति की पृथक् सत्ता मानते हैं, वे द्वैतवादी हैं, किन्तु अद्वैतवादी नहीं हैं। क्योंकि वे लोग, अभी तक किसी भी अवस्था में द्वैतरहित शुद्ध ब्रह्म सिद्ध नहीं कर सके। इसी से न आगे ही कर सकेंगे। क्योंकि अविद्या की बाधक मैं ब्रह्म हूँ, ऐसी विद्यावृत्ति भी तो अन्त में स्वाश्रय आत्मा में ही लीन होवेगी, कारण कि अविद्या और विद्या का सत् आत्मा ही आधार है। अतः कैवल्य में भी द्वैत ही बना रहेगा। किन्तु आत्मा शुद्ध ब्रह्म नहीं हो सकेगा। अस्तु। अतः वह सत्, महाप्रलय में अखंड ब्रह्म या निरपेक्ष व्यापक था। **"तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति"** उसने इच्छा की बहुत हो जाऊं और नाम रूप के द्वारा प्रकट होऊं। भावार्थ यह है कि उसके एक पाद विशुद्ध सत् में, महाप्रलय की अन्तिम अवस्थामें अहंवृत्ति उत्पन्न हुई। यह अहंरूपा इच्छा शक्ति स्व नाम सद्ब्रह्म के आश्रित है और स्व नाम सद्ब्रह्म को ही विषय या आवृत करती है, इसी से यह स्वाश्रया स्वविषया कही जाती है। अब वह स्वाश्रया से स्वविषया या आछादक

हो गई। अर्थात् अभिन्नता को त्याग कर भिन्न-सी हो गई। उसी द्वैतरूप कारण वृत्ति द्वारा वही शुद्ध सत्, कारण ब्रह्मरूप माया-विशिष्ट ईश्वर और अविद्यायुक्त प्राज्ञ ईश्वर हो गया। जैसाकि मृतिका है, ऐसे एक शुद्ध नामरूप से उसका पिंडरूप होजाने पर वह द्वैतरूप-सा मृतिका का पिण्ड बन जाता है और कहा जाता है। उसीके द्वारा शुद्ध मृतिका में घट आदि कार्य की कारणता आती है। ऐसे ही शुद्ध सत् में, अहंवृत्ति द्वारा कारणता का आरोप या आरम्भ होता है। दूसरी इच्छा से सद्रूप कारण ब्रह्मने, बुद्धिप्रधान कार्यरूप सूक्ष्म सृष्टिकी रचना की, उसीके द्वारा वह सत्, कारण ब्रह्म रूपसे कर्तारूप हिरण्यगर्भ और तैजस नाम वाला हो गया। तीसरी इच्छा, सद्रूप कर्तामें, वैश्वानर और विश्वरूप बनने के लिये स्थूल सृष्टि के लिये हुई। ऐसी इच्छा करके "तत्तेजोऽसृजत" उसने सद्रूप कर्ता (हिरण्यगर्भ और तैजसने) **"सेयं देवतक्षत०"** उस इस सद्रूप देवताने इच्छा की कि अब मैं इन तेज आदि तीन देवताओं में जीव रूपसे प्रवेश करके नाम और रूप को प्रकट करूं। इन देवताओं के तीन-तीन भाग करूं। **"सेयं देवतेमास्तिस्त्रो देवता अनेनैव जीवेनात्मना-नुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत्।"** फिर उस सद्रूप देवताने इन देव-ताओं में जीव रूपसे प्रवेश करके (ब्रह्मा-आदि) नाम रूप को प्रकट किया। श्रुति में इच्छा रहित सत् = सच्चिदानन्द ब्रह्म का परोक्ष नाम सा = वह या उस ऐसा कहा है और इच्छा के सहित उसी सत् का अपरोक्ष नाम इयम् = यह या इस ऐसा ग्रहण किया है। अर्थात् उस इस देवताने इच्छा की 'सेयं' इस पद का ऐसा अर्थ बनता है। इसलिये यहां द्वैतवादियों के द्वैतवाद के लिये किंचित् भी स्थान

नहीं है। (पंचदशी चित्रदीप श्लोक १ । २ । ३ । ४ में भी, सृष्टिकी उत्पत्ति शुद्ध ब्रह्म से ही वस्त्र के दृष्टान्त से दिखाई गई है। जैसाकि एक ही वस्त्र, अन्य द्रव्यके सम्बन्ध बिना धौत, मांड देनेसे घट्टित, मसि के चिन्ह युक्त लांछित एवं वर्णों के आरोपित होने से रंजित होजाता है। जैसे एक ही वस्त्र की चार संज्ञाएं हैं। ऐसे ही एक ही परमात्मा. माया तत्कार्य से रहित चित्त, मायाके योगसे अन्तर्यामो, सूक्ष्म सृष्टिसे सूत्रात्मा,एवं स्थूल सृष्टि से विराट कहलाता है। ऐसा कहा है।) इस विषय को ऐसे समझना चाहिये। जैसाकि मनुष्य एकरूप या आकार वाली वस्तु है। जब तक इसके साथ किसी गुण कर्म जाति देश आदि का सम्बन्ध नहीं होता,तब तक यह निर्गुण रूप है। जब इसके साथ, गुण आदि का लगाव होजाता है, तब इसका आचार्य,राजा,मन्त्री, किसान, या द्वारपाल आदि एवं पुत्र आदि के सम्बन्धसे पिता आदि मिश्रित विशिष्ट या सगुण नाम होजाता है। क्योंकि अब इसमं मनुष्यात्मक रूप, गुण कर्म जाति या संबन्ध ये दो वस्तुएं होगई हैं। यह मिश्रित या सगुण नाम, एक दूसरे से भिन्न है। इसलिये राजा तो द्वारपाल से भिन्न है और द्वारपाल राजा से अलग है। परन्तु मनुष्यात्मक रूप, दोनों में ही व्यापक है। इसी प्रकार सत् या सच्चिदानन्द भी समान्य रूप है और वह ब्रह्म या व्यापक है। जब तक इसमें अहंवृत्ति उत्पन्न नहीं हुई, तब तक यह निर्गुण निराकार रहता है। जब इसमें अहं या मैं वृत्ति प्रकट हुई तब इसका सात्विकी वृत्ति से अन्तर्यामी हिरण्यगर्भ वैश्वानर नाम होजाता है। और जहां-जहां सत्में शुद्ध सात्विकी वृत्ति की अपेक्षा, कुछ मलिन सात्विकी अहंवृत्ति प्रकट हुई, वहां-वहां पर सत् का ही,

प्राज्ञ तैजस और विश्व सगुण नाम होजाता है। (विष्णु शिव प्रजापति इन्द्र वरुण आदि देव दानव मानव कीट पतंग वृक्ष पर्यन्त सद्रूप विश्व के ही नाम हैं) क्योंकि अब इसमें सत् आत्मकरूप तथा गुण आदि दो वस्तुएं होगई हैं। यह मिश्रित या सगुण नाम, एक दूसरेसे भिन्न २ है। इसीसे आदित्यस्थानी ईश्वरसे तो देव दानव आदि भिन्न हैं, और देव दानव आदि सब ईश्वर से पृथक् हैं। परन्तु सच्चिदानन्दात्मक रूप ईश्वर से लेकर सब में ही व्यापक है। इसप्रकार वह एक ही सत्, एक से अनेक होगया—इसीको विवर्तवाद (एक ही वस्तुका अपने रूपको न त्यागते हुए अन्य रूपसे प्रतीत होना) कहते हैं। अर्थात् वही एक अद्वितीय सत्, इच्छारूपी मनके सहित होनेसे संसारी बन गया या उपास्य उपासक बन गया। (सृष्टि क्रम के विशेष बोधार्थ "वैदिक ब्रह्मविचार" पुस्तक के सगुण ब्रह्म प्रकरण को पढ़िये) इसप्रकार कही गई रीतिसे "सदेव" इस श्रुतिसे सत् = सच्चिदानन्द की महाप्रलयमें निर्गुण रूप निष्प्रपंच अवस्थाको दिखला कर और "तदैक्षत" इससे लेकर सप्तम खण्ड तक सत् से सृष्टि की उत्पत्ति या अध्यारोप बताकर, अब फिर उसी सत् में सृष्टि=प्रपंच के अपवाद=अभाव या लयको दिखाती हुई अब इसी अध्याय के अष्टम खण्ड की पहिली श्रुति को पढ़िये।

"उद्दालको हारुणी श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच स्वप्नान्तं मे सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषः स्वपिति नाम सता सोम्य तदा संपन्नो भवति स्वमपीतो भवति तस्मादेनं स्वपितीत्याचक्षते स्वं ह्यपीतो भवति।"१।

आरुणी उद्दालकने अपने श्वेतकेतु पुत्र से कहा कि सोम्य, अब तू मेरेसे सुषुप्ति को विशेष रूप से समझले, जिस अवस्था में यह पुरुष स्व-

पिति नाम वाला होता है, हे सोम्य, उस समय यह सत् से संपन्न हो जाता है, यह अपने को प्राप्त होता है, इसीसे लोग इसे स्वपिति या सोता है ऐसा कहा करते हैं, क्योंकि यह अपने को प्राप्त होजाता है ।१। शांकरभाष्य—**"यन्मयो यत्स्थश्च जीवो मनन-दर्शन-श्रवणादि-व्यवहाराय कल्पते तदुपरमे च स्वं देवतारूपमेव प्रतिपद्यते ।"** जीव, जिसके रूप से और जिसमें स्थिर होकर मनन दर्शन और श्रवण आदि व्यवहार करता है (सुषुप्ति में) उस मन के उपराम होनेपर अपने परदेवतारूपको प्राप्त हो जाता है। **"नह्यन्यत्र सुषुप्तात्स्वमपीतीति जीवस्येच्छन्ति ब्रह्मविद:"** ब्रह्मवेत्ता लोग, सुषुप्ति भिन्न अन्य अवस्था में (जाग्रत स्वप्न में) जीवका अपने स्वरूप को प्राप्त होना नहीं मानते, अर्थात् सुषुप्ति में ही मानते हैं । **"जीवात्मना मनसि प्रविष्टा नामरूप-व्याकरणाय परादेवता सा स्वमेवात्मानं प्रतिपद्यते जीवरूपतां मन आख्यां हित्वा"** नामरूप को प्रकट करने के लिए मनमें प्रविष्ट हुआ परमात्मा, मन संज्ञक जीवरूप को त्याग कर वह अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाता है । **"मनसि प्रविष्टं मन आदि संसर्गकृतं जीवरूपं परित्यज्य स्वं सद्रूपं यत्परमार्थ-सत्यमपीतो अपिगतो भवति"** मन में प्रविष्ट हुआ मन आदि के संबन्ध से किये हुये जीवरूप को त्याग कर अपना जो परमार्थ सत्य सद्रूप है उसे प्राप्त हो जाता है । **"अतस्तत्सत्त्वमसीतिश्वेतकेतो"** हे श्वेत-केतो, इसलिये वह सत् तू है । भाष्य में तत्त्वमसि वाक्य का ऐसा अर्थ किया है। इसप्रकार भाष्य में अहंवृत्ति से रहित शुद्ध सत् को तत्पद से ग्रहण किया है। और अहंवृत्ति के सहित सत् को त्वं पद से ग्रहण किया है । इससे ईश्वर और जीव दोनों ही त्वं पद में

आजाते हैं। तात्पर्य यह है कि सृष्टि से पहिले जो द्वैतरहित सत् था, तथा जिसने इच्छा करके तेज आदि को रचकर उसमें जीवरूप से प्रवेश किया, एवं वही जो सत्, अब सुषुप्तिकी मध्य अवस्थामें मन के सत् में लीन हो जाने से द्वैतरहित पूर्णब्रह्म हो गया है, वही तू है। अर्थात् मन की निरुद्ध अवस्थामें तत् और त्वं में भेद नहीं है। क्योंकि अहंवृत्ति से रहित सत् का परोक्षनाम तत् है और सद्रूप तत् का हो अहंवृत्ति के सहित अपरोक्षनाम त्वं है। स्मरण रहे कि अहं या मैं यह एक, सत्व रज और तमोगुणरूपा सामान्यवृत्ति है। यही सत् में संसारीपने का हेतु है। इसी के द्वारा सत् का, माया-विशिष्ट ईश्वर और अविद्यायुक्त प्राज्ञ ईश्वर नाम होजाता है। क्योंकि कारणशरीर का अभिमानी प्राज्ञ भी ईश्वर है। इसीका कठ० में **"अव्यक्तात्पुरुषः परः"** अव्यक्त से परे पुरुष है—ऐसा अव्यक्त नाम है। क्योंकि यह सामान्यवृत्ति किसी विशेष अर्थ की व्यंजक या बोधक नहीं है। इसीका नाम तैतरीयमें आनन्दमय कोश है तथा मुण्डक० में **"अक्षरात्परतः परः"** पर अक्षर से परे परमात्मा है, ऐसा अक्षर नाम है। क्योंकि यह क्षररूप कार्य की अपेक्षा, अक्षर या अविनाशी है। जब इस मैं के साथ कर्ता भोक्ता हूं— ऐसा प्रयोग होता है—तब इसी अहंका नाम अज्ञान होजाता है, और इसके साथी सच्चिदानन्द का नाम अज्ञानी होजाता है। जब इस मैं के साथ सच्चिदानन्द ब्रह्म हूँ—ऐसा प्रयोग होता है—तब इस वृत्तिका नाम विद्या या ज्ञान होजाता है, और इसके साथी सत् का नाम विद्वान् या ज्ञानी हो जाता है, अर्थात् इसी अहंवृत्ति के प्रधान प्रकृति, माया, अविद्या, अज्ञान, आवरण, मन, बुद्धि और चित्त

आदि सूक्ष्म स्थूल नाम हैं। १. जो लोग, अहंवृत्तिसे आगे अज्ञान की कल्पना करके, सुषुप्तिमें इस अहंवृत्तिका अज्ञानमें लीन होना बता रहे हैं, अर्थात् अहंवृत्ति और सच्चिदानन्दके बीचमें अज्ञानरूपी एक दीवार खडी कर रहे हैं—उन लोगोंने **"प्राणबन्धनं हि सोम्य मनः"** हे सोम्य, मन, प्राण बन्धन वाला है यानी मनका सत् ही आधार या आश्रय है, इस श्रुतिको तथा यहांके शांकरभाष्य को ध्यानपूर्वक नहीं पढ़ा है। क्योंकि भाष्य में मनका सत् में लीन होना बतलाया है, अज्ञानमें नहीं। इसीसे भाष्यने सुषुप्तिमें सत् को द्वैतरहित शुद्ध ब्रह्म सिद्ध किया है। २. समस्त सुषुप्ति को आनन्दमयकोश या कारणशरीर मानने वाले उन लोगोंने पंचदशीके योगानन्द प्रकरणमें ४४।४५।५६ और १६ इन श्लोकों को भी ध्यानपूर्वक नहीं पढ़ा है। क्योंकि इन श्लोकोंमें, सुषुप्ति की आदि अवस्था को आनन्दमयकोश मानकर वह जीव की अवस्था मानी है, और उसी जीवको, सुषुप्ति की मध्य अवस्था या गाढ सुषुप्तिमें द्वैतरहित पूर्ण ब्रह्म सिद्ध किया है। और न उन्होंने ब्रह्मसूत्र अ० ३ पाद २ सूत्र ७ **"तदभावो नाडीषु तत् श्रुतेरात्मनि च"** इस सूत्रके भाष्य को ध्यानपूर्वक देखा है। क्योंकि भाष्यने सुषुप्तिमें जीव की ब्रह्मरूपसे स्थिति बतलाई है। तैत्तरीयमें भी **"ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा"** आनन्दमयकोषरूप पक्षीका ब्रह्म आधार है, ऐसा कहा है। इसलिए अहंवृत्तिके आगे केवल सच्चिदानन्द ब्रह्म है, किन्तु अज्ञान अविद्या या कारण शरीर नाम की कोई वस्तु नहीं है। अतः गाढ सुषुप्तिमें यह द्वैतरहित पूर्ण ब्रह्म है। इसप्रकार पूर्वोक्त श्रुतियोंसे तथा भाष्यसे सिद्ध होगया कि जीवात्माका, अहंवृत्तिसे रहित वास्तविक स्वरूप सच्चिदा-

नन्द ब्रह्म है तथा यही ज्ञेय ब्रह्म या जाननेके योग्य ब्रह्म है ।

आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान का अधिकारी

यह जीवात्मा, वास्तवमें सच्चिदानन्दरूप होता हुआ भी अपनी अहंरूपा अविद्या शक्तिके द्वारा, पुण्य-पापका कर्ता और उनके फल सुख-दुखका भोक्ता बनकर शब्दादिक पंचविषयात्मक संसारमें इष्ट प्राप्तिके लिये और अनिष्ट की निवृत्ति के लिये कभी उच्च और कभी नीच योनियों में भ्रमण कर रहा है। ज़ब किसी पुण्यकर्मसे निष्काम-कर्म करता है, तब इसके अन्तःकरणका मल नाम दोष दूर हो जाता है। मल नाम राग-द्वेषका है। जब फिर ईश्वर की नामस्मरण आदि निष्काम भक्ति करता है तब इसके विक्षेप की निवृत्ति हो-जाती है। विक्षेप नाम चित्तकी चंचलताका है। जब तीसरा आवरण नामक दोष रह जाता है। आवरण नाम अपने वास्तविक रूप को न जानने का है। यह ज्ञानसे नष्ट होता है। विवेक विराग, शमादि, षट्क-संपत्ति, मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन और समाधि ये आठ साधन ज्ञानके हैं। इनमें भी विवेक आदि चार श्रवणके साधन हैं, और श्रवण आदि चार ज्ञान के साक्षात् साधन हैं। १. विवेक = सच्चिदानन्द ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या या अस्थायी है; इस विचारका नाम विवेक है। २. विराग = इस लोकके और ब्रह्मलोक तकके भोगोंमें ग्लानि होजानी, इसका नाम वैराग्य है। ३. शमादि षट्क संपत्ति (क) शम = भोगे हुए विषयों में मन को फिर न जाने देना। (ख) दम = इन्द्रियों को शास्त्रनिषिद्ध विषयों से रोकना। (ग) श्रद्धा = असांप्रदायी उपनिषद् वाक्योंमें और तदनुसारी गुरुके वाक्योंमें विश्वास। (घ) समाधान = भविष्यत्में होनेवाले विषयोंमें

मन को न जाने देना । (ङ) उपरति = स्वयं प्राप्त हुए विषयोंमें भी उपेक्षा या त्याग बुद्धि करनी । (च) तितिक्षा = शीत उष्ण आदि द्वन्द्वों या जोड़े को बिना किसी प्रतिक्रिया किये सहन करना । यह तीसरा साधन शमादि षट्क संपत्ति है । ४. मुमुक्षा = मोक्ष की इच्छा होनी । ये चार साधन ज्ञानके हैं । इनके द्वारा कोई भी मनुष्य ज्ञानका अधिकारी अर्थात् ज्ञानके साधन श्रवण आदिका अधिकारी या पात्र बन जाता है । १. श्रवण = गुरुके मुखसे "तत्त्वमसि" आदि जीव और ब्रह्मके अभेद बोधक वाक्यों को सुनना । २. मनन = एकान्तमें, जीव और ब्रह्मके अभेद को सिद्ध करने वाली युक्तियों सहित सुने हुए वाक्योंका चिन्तन करना । इनके द्वारा अधिकारी ब्रह्मवित् होजाता है । ३. निदिध्यासन या सविकल्प समाधि = बुद्धिवृत्तिका स्वस्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्ममें, मैं ब्रह्म हूं इसप्रकार शान्त प्रवाह बने रहना, इसके द्वारा ब्रह्मवित् व्यक्ति, ब्रह्मनिष्ठ हो जाता है । ४. निर्विकल्प समाधि = मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म हूँ, इस वृत्ति का भी सच्चिदानन्द ब्रह्ममें, लीन हो जाना, इसके द्वारा ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति, ब्रह्म होजाता है । तात्पर्य यह कि, विवेक आदि ज्ञानके साधनोंसे रहित अनधिकारी मनुष्य भी, श्रवण मननके द्वारा ब्रह्मवित् होजाता है—जैसाकि आजका बहुतसा समाज, ब्रह्मज्ञान कथन के द्वारा ब्रह्मवेत्ता बना हुआ है । परन्तु जो व्यक्ति, विवेक आदि ज्ञानके साधनों द्वारा श्रवण मनन निदिध्यासन और समाधि करके ब्रह्मवित् होता है । वास्तवमें वही उत्तम ब्रह्मवित् है ।

ज्ञानीका व्यवहार

धर्मशास्त्रोंके अनुसार ब्रह्मवित्, ब्रह्मचर्य आदि नीचेके आश्रमोंमें

अपनी प्रारब्धके अनुसार जाता है, परन्तु ऊपरके संन्यास आदि आश्रमोंसे नीचेके आश्रमोंमें नहीं आता है। अर्थात् **"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः"** इत्यादि न्यायके अनुसार ज्ञानीका व्यवहार अन्य मनुष्योंके लिये आदर्शरूप होनेसे वह जिस आश्रममें रहता है उसके धर्मोंका पालन करता है, किन्तु उनका उल्लंघन नहीं करता।

ज्ञानका फल

ब्रह्म० अ० ४ पाद १ सूत्र १३ **"तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ।"** आत्माका वास्तविक स्वरूप साक्षात् कर लेने पर, आत्मज्ञके पीछेके और पहिले पुण्य पापोंका अश्लेश और विनाश होजाता है। अर्थात् पहिलेके संचितकर्मोंका विनाश होजाता है और आत्मज्ञान हो जानेके अनन्तर किये हुए पुण्य पापोंका उसको स्पर्श नहीं होता। सूत्र १९ **"भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा संपद्यते"** प्रारब्धकर्मों की भोग द्वारा समाप्ति करके ब्रह्मरूप हो जाता है। यह सूत्र छांदोग्य छठा अध्याय खण्ड १४ की **"तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्य इति।"** उसको ब्रह्म रूप होनेमें तभीतक विलम्ब है, जब तक वह प्रारब्धकर्मों को भोगकर समाप्त नहीं कर देता, उसके अनन्तर वह सत्‌रूप होजाता है, इस श्रुतिके आधार पर बनाया गया है। बृहदा० अ० ४ ब्राह्मण ४ में श्रुति **"अथाकामयमानो"** जो कामनारहित निष्काम और आत्मकाम है—उसके प्राण गमन नहीं करते, यहां ही लीन होजाते हैं, वह ब्रह्म होता हुआ ही ब्रह्म होता है। इसप्रकार वह ब्रह्मवित् मुक्त होजाता है। ब्रह्म० अ० ४ पाद ४ सूत्र १६ **"स्वाप्ययसंपत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि।"** सुषुप्ति और कैवल्यमुक्तिमें ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय रूपी विशेष ज्ञानका अभाव

हो जाता है। भावार्थ यह कि सुषुप्ति अवस्थामें, मनोवृत्ति, कर्म और वासनाके सहित हुई स्वाश्रय सत्‌में लीन होती है, इसीसे वहांसे लौट आती है। परन्तु कैवल्यमुक्ति की अवस्थामें, मैं ब्रह्म हूं ऐसी विद्यारूप मनोवृत्ति, कर्म और वासनासे रहित हुई स्वाश्रय सच्चिदानन्द ब्रह्ममें लीन होती है—इसीसे उसका वहांसे उत्थान नहीं होता। इन दोनोंमें इतना ही अन्तर है। इसप्रकार मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म हूं, इस आत्मज्ञानका फल, स्वस्वरूप से स्थित होना कैवल्यमोक्ष है। इस समग्र लेखका सारांश यह हुआ कि वेदोंके पूर्वोक्त वाक्यों के अनुसार, भक्तिका मुख्यफल आत्मज्ञानका होना है और आत्मज्ञान का फल मोक्ष है। अतः भक्ति, ज्ञानका साधन है और ज्ञान मोक्षका साधन है, किन्तु भक्ति, स्वतन्त्र रूपसे मोक्षका साधन नहीं है।

इसप्रकार "वेदोक्त भक्ति ज्ञान तथा इनका फल" नामका लेख समाप्त हुआ।

छूटा हुआ पाठ

पृष्ठ १५ पंक्ति १३ (हिरण्यगर्भ और तैजसने) के आगे—

'तेजको रचा, तेजके द्वारा जलको और जलके द्वारा पृथ्वीको रचा'। खण्ड ३।

श्री दण्डी संन्यासी रामतीर्थ जी द्वारा

निर्मित पुस्तकें

१. शास्त्रीय धर्मदिवाकर।

२. वैदिक ब्रह्मविचार।

३. वेदोक्त नित्यकर्म।

४. विचार-सागर के पूर्वापर सिद्धान्तमें महाविरोध।

५. वैदिक-भक्ति-ज्ञान-फलम् (संस्कृतभाषा-याम्)।

६. वेदोक्त भक्ति ज्ञान तथा इनका फल।

मुद्रक : श्री रामेश वेदी, गुरुकुल मुद्रणालय,
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

सलाहकार बनके वह नई ...
दृष्टियों एशियामें रहेगा। आजकल वह भारतमें हैं।

विदेशी छात्रोंके एक सलाहकार के रूपमें डब्लू. वेलेस मैनर हाल ही में सपरिवार भारके एक वर्षके दौरे पर रवाना हुए हैं।

भारतमें वह शिक्षा सम्बन्धी उद्देश्यों तथा पद्धतिका पर्यवेक्षण करेंगे और वहां छात्रोंको अमरीका में अध्ययनके अवसरोंके बारेमें सलाह देंगे।

इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि भारतमें अमरीकाके राजदूत श्री जोन गैलब्रेथ भारतीय स्कूल प्रणालीके विकासमें तेजी लाने के प्रति विशेष दिलचस्पी रखते हैं।